मैथिल कोकिल विद्यापति की प्रहेलिका लेखन कला

ले० आचार्य परमानन्दन शास्त्री

मैथिल कोकिल विद्यापति न केवल शृंगारिक गीति काव्यों की रचना में अपनी सानी नहीं रखते थे, अपि तु प्रहेलिका लेखन कला में भी उनका अपना ही बिशिष्ट स्थान था। प्रहेलिका के संबंध में साहित्यिक आचार्यों में यह विवाद चलता रहा कि प्रहेलिका को साहित्यिक रचना में कौन सा स्थान दिया जाय। अधिकतर आचार्यों की परिभाषा में यह चित्र काव्य है और अंगी रस के शब्द तथा अर्थ, इन दोनों अंगों में से किसी के भी शोभावर्धक हो कर अंगी रस के अलंकार नहीं रहने के कारण यह अलंकारों की कोटि में नहीं आता है। 'अष्टादश-भाषा-वार-विलासिनी-भुजंग' श्री विश्वनाथ कविराज ने तो अपने अलंकार ग्रन्थ—साहित्य दर्पण—में एक कदम और आगे वढ़ कर कह दिया है कि:—

रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका ।।[1]

अर्थात्—रस के परिपन्थी, अर्थात् रस के उद्बोध में विरोधी, होने के कारण प्रहेलिका अलंकार नहीं हो सकता है।

किंतु, मैथिल कोकिल की प्रहेलिकाओं ने यह स्पष्ट प्रमाणित कर दिया है कि प्रहेलिकाएं रस की परिपन्थी ही नहीं होतीं बल्कि अन्य किसी भी अलंकार से कम अंगद्वारक रस-अलंकारित्व उन में नहीं हुआ करता है।

मैथिल कोकिल की ऐसी ही एक प्रहेलिका मैं यहां उद्धृत करूंगा। पाठक देखेंगे कि कितनी अधिक अलंकारत्व की मात्रा इस प्रहेलिका में निहित है।

प्रहेलिका का पाठ इस प्रकार है :—

कुसुमित-कानन-कुंज वसी।
नयनक काजर घोरि मसी।।
नखसओ लिखल नलिनि-दल-पात।
लीखि पठाओल आखर सात।।
पहिलहि लिखलनि पहिल वसन्त।
दोसरें लिखलनि तेसराक अन्त।।
लिखि नहिं सकली, अनुज वसन्त।
पहिलहिं पद अछि जीवक अन्त।।
भनहि विद्यापति आखर-लेख।
वुधजन हो से कहए विशेष।।

अर्थात्—फुलाये जंगल के कुंज में वास करती हुई (राधा ने) आंख के काजल की स्याही घोल कर नख से नलिनी-दलका पत्र लिखा जिस पर "आखर सात"—सात अक्षर लिख भेजे। (राधा ने) पहले ही पहला वसन्त लिखा। दूसरे में तीसरे का अन्त लिख दिया। यह अनुज वसन्त नहीं लिख सकी। पहला ही पद है जीव—जीवन का अन्त। विद्यापति आखर-लेख—अक्षर-लेखा—कहते हैं। जो वुधजन होगा वह इसका विशेष कहेगा।

कहना न होगा कि इस प्रहेलिका में ऐसी कुछ विशेष बात नहीं जिस से इस के उद्दिष्ट अर्थ के समझने में विशेष कठिनाई हो। फिर भी 'विद्यापति काव्यालोक' जैसे जनप्रिय पुस्तक के लेखक श्री नरेन्द्र नाथ दास विद्यालंकार का यह कहना सर्वांशतः सत्य है कि[2] इस प्रहेलिका

---

[1] साहित्य दर्पण १०म परिच्छेद, कारिका १७।
[2] विद्यापति की एक प्रहेलिका' शीर्षक निवन्ध, दैनिक आर्यावर्त्त, पटना २०सितंबर१९५९।

पद की व्याख्या में करीब--करीब सभी टीकाकारों ने गलती की है, इस का ऊटपटांग अर्थ किया है जिस से इस सुन्दर प्रहेलिका पद का सारा भाव-सौन्दर्य नष्ट हो गया है। किन्तु, यदि स्पष्ट वादिता दोष नहीं हो, तो श्रद्धेय विद्यालंकार जी का अर्थ भी पूर्व टीकाकारों के अर्थों की कोटि में ही आता है। क्यों कि, उन के अनुसार "इस पद का असल तात्पर्य है कि रजोदर्शन के पश्चात् तीन दिनों का अन्त हो जाने पर स्वर्गस्पर्द्धी सुन्दरी युवती राधा स्नानादि कर सर्वथा पवित्रा और संगम-सुखानुभव-योग्या बन चुकी है। उस अवस्था में स्वभावतः मिलनेच्छा अत्यधिक जाग्रत हो उठती है। उस अवस्था में राधा कुसुमित कानन में बैठी हुई है।" "कुसुमित कानन" तो सहज ही उद्दीपन भाव का प्रभविष्णु है। उस पर भी रजोदर्शन बीत जाने पर स्नानादि से पवित्रा अनुरक्ता कामिनी राधा के लिए कुसुमित कानन प्रज्वलित दावाग्नि जैसे उस के प्राणों को "जीवक अन्त" करने पर तुला हुआ है।[3] जिस में दो अनुपपत्तियां प्रधान हैं। प्रथम यह कि राधा विद्यापति के अनुसार स्वकीया नायिका नहीं, अपि तु परकीया नायिका रही; जिस के संबंध में ऋतुस्नातापन का कोई विशेष महत्व नहीं। क्यों कि, शास्त्रानुसार ऋतुस्नाता के परित्याग में दोष स्वपत्नी-मात्र में सीमित माना गया है। और उसी में दोष बताते हुए पराशर ने कहा है कि :—

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां पतते नात्र संशयः।।[4]

अर्थात्—ऋतुस्नाता भार्या का, सन्निधि रहने पर, जो गमन नहीं करता है वह घोर भ्रूण हत्या के पाप का भागी होता है।

और, यहां भार्या का अर्थ विवाहिता पत्नी है। क्यों कि,—

—'एवं विवाहेनैव भार्या भवतीति।'[5]

अर्थात् विवाह से ही भार्या होती है। ऐसा धर्मशास्त्र कारों का मत है। इस लिए, विद्यापति की राधा के कृष्ण की परकीया नायिका रहने के कारण, भार्यात्व के अभाव के कारण, उस का ऋतुस्नातापन कुछ भी महत्व नहीं रखता है।

दूसरी अनुपपत्ति यह है कि यदि मैथिल कोकिल को राधा का स्वीयात्व अभीष्ट रहता तो प्रहेलिका की पहली दो पंक्तियां वे नहीं ही लिखते। वे दोनों पंक्तियां स्पष्टतः अभिसार का संकेत करती हैं; और प्रहेलिका के अन्य पदों से यह स्पष्ट है कि अभिसार स्थल पर नायक को नहीं पा कर निराश नायिका ने रोते हुए नायक के पास पत्र भेजा था। स्वकीया नायिका का अभिसरण साहित्य संसार में अश्रुतपूर्व है। इस लिए, वैसा अनुमान करना साहित्यिक परंपरा के सर्वथा प्रतिकूल होगा। साथ ही, 'प्रफुल्लित कुसुमित कुंज में अकेली बैठ कर'[6]........लिखना भी असंगत है। क्यों कि, "बसी" का अर्थ बैठ कर नहीं, अपितु बास करती हुई होना चाहिए। और 'अकेली' अपनी तरफ से जोड़ना भी ठीक नहीं। क्यों कि, यदि राधा अकेली वहां मान ली जाय तो आखर सात लिख भेजने की उपपत्ति के लिए प्रयास करना पड़ेगा।

अनर्थ परंपरा।

उक्त प्रहेलिका के टीकाकारों ने एक प्रकार से अनर्थ की परंपरा ही कायम कर दी है। और तो और, आखर सात के बारे में भी सामान्य विवेक से भी काम लेने का प्रयास नहीं किया गया है।

उदाहरण स्वरूप, मैथिल कवि चन्दा झा के सहयोग से संपादित–संगृहीत विद्यापति पदावली में[7] स्वर्गीय नगेन्द्र नाथ गुप्त ने "मधुकर आयाहि" इस सप्ताक्षर पत्र का अनुमान किया

---

[3] वहीं।

[4] पराशरस्मृति, ४।१४।

[5] मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ४ की मेधातिथि की टीका।

[6] आर्यावर्त्त में प्रकाशित उक्त निबन्ध।

[7] वैष्णव महाजन पदावली में द्वितीय खण्ड के रूप में प्रकाशित नवपर्याय तृतीय संस्करण

है जो इस कारण भी अनुचित जँचता है कि पत्र संस्कृत में लिखने का कोई भी औचित्य यहां नहीं है। मिथिला भाषा में "मधुकर आइछ" लिखना मैथिली भाषा के अज्ञान का ही अधिक प्रकाश करता है। इसी प्रकार अमूल्य चरण विद्याभूषण[8] का "मधुकर मीलव" तथा विमान विहारी मजुमदार[9] का मधुकर मीलब' लिखना भी बिल्कुल असंगत अर्थ है। स्वर्गीय ग्रियर्सन[10] ने" कुसुमित कानन" इस सप्ताक्षर पत्र का संकेत किया है, जिस में मुख्य दो अनुपपत्तियों का निर्देश ऊपर किया जा चुका है।

मधुकर से नायक का संबोधन करवाने वाले टीकाकारों को यह भी स्मरण रखना उचित था कि भ्रमर का प्रेम निभाना साहित्यिकों में दृष्टचर नहीं। अपितु, उस का इधर—उधर भटकते रहना ही स्वभाव बताया गया है।

काव्य प्रकाशकार का एक श्लोक इस संबंध में उद्धृत करना मैं यहां आवश्यक इस लिए मानता हूं कि मैथिल कोकिल मुख्यत: संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। श्लोक इस प्रकार है :—

अभिनवनलिनीविनोदलुब्धो मुकुलितकैरविणीवियोगभीरु:।
भ्रमति मधुकरोऽयमन्तराले श्रयति न पंकजिनीं कुमुद्वतीं वा।।

अर्थात्—नयी नवेली नलिनी के साथ विनोद का लोभी और कुम्हलायी कैरविणी के वियोग से डरता हुआ यह मधुकर बीच में ही मंड़रा रहा है, कमलिनी या कुमुदिनी—किसी को भी नहीं अपना रहा है।

ऐसी स्थिति में कम से कम मेरा मन तो यह मान बैठने को तैयार नहीं है कि अस्थिरचित्तता के प्रतीक 'मधुकर' शब्द से कवि कोकिल ने राधा द्वारा अपने नायक का संबोधन कराया होगा।

उचित पद्धति।

मैथिल कवि कोकिल विद्यापति संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित के साथ ही रससिद्ध कवि भी थे। अत:, उन की रचनाओं में संस्कृत साहित्य की मर्यादाओं का अक्षुण्ण रहना भी स्वाभाविक है। और, इस दृष्टिकोण से विचार करते समय यह देखना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि उस समय तक साहित्यिक मर्यादा कहाँ तक आगे बढ़ गयी थी।

प्रस्तुत प्रहेलिका में दो बातें विशेष हैं। एक तो 'नलिनि दल पात' लिख भेजना और दूसरा उस पत्र का मजमून। और, दोनों के ही संबंध में संस्कृत में जो साहित्य उपलब्ध होता है उस की वानगी ही यहां अर्थ स्पष्ट करने में पर्याप्त होगी।

प्रथम पक्ष में एक प्रसंग इस प्रकार आया है कि कोई नायिका प्रियतम के पास दूती भेजना चाहती है। किंतु, चतुरा दूती एक दूसरा ही तरीका अपनाने का सुझाव देती है। दूती कहती है कि :—

वृथा गाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम रुजं
कदाचिद् धूर्त्तोऽसौ कविवचनमित्याकलयति।
इदं पार्श्वे तस्य प्रहिणु परिलग्नांजनचय—
स्रवद्वाष्पोत्पीड़स्थगितलिपि ताटंकयुगलम्।।
—प्राचीन सूक्ति।[11]

अर्थात्—व्यर्थ की गाथाओं और श्लोकों—गुण गानों—की कोई जरूरत नहीं। मेरी अलीक व्यथा को वह धूर्त कहीं कवि का वचन नहीं मान बैठे। इस लिए यह ताटंक—अलंकरण विशेष—उस के पास भेज दो, जो परिलग्न अंजन राशि हो कर स्रवित होनेवाली अस्रु राशि के प्रवाह से स्थगित-लिपि बन चुकी है। अर्थात् जिस की नक्काशियाँ अंजनित नेत्र के अविरल अस्रु प्रवाह से मलिन हो चुकी हैं।

वसुमती साहित्यमन्दिर।
[8] नरेन्द्र नाथ दास के उक्त लेख में उद्धृत।
[9] विद्यापति पदावली (नूतन संस्करण), पद संख्या ३२३।
[10] मैथिल क्रैस्टोमैथी, पद संख्या ६०।
[11] सुभाषित सुधारत्न भाण्डागार (खेमराज प्रकाशित), पृ: १२२ श्लोक ७।

तात्पर्य यह कि जुवानी-जमाखर्च पर भले ही अविचारित किया जा सके मगर रोने-रोने मलिन हुए ताटंक युगल तो विचारा करा ही देगा कि नायिका विरह में अधीर हो कर जार-जार आंसू बहा रही है।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि इस संस्कृत पण्डित की नायिका जहां घर पर रोती है; और ताटंक धारण पूर्वक रुदन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वह अभी तक विरह वेदना से अत्यन्त तन्वंगी नहीं बन पायी है, वहां कवि कोकिल की यह नायिका एक कदम और आगे बढ़ी हुई है। यह 'कुसुमित कानन कुंज' में अभिसार कर चुकी है, और यहां चिर प्रतीक्षा के बाद भी जब उसे प्रियतम का दर्शन नहीं हो पाया है तब उसने नलिनी—दल पात भेज दिया है।

साथ ही, प्रहेलिका का 'बसी' पद इस बात का संकेत करता है कि वह वहां बहुत समय तक प्रतीक्षा करती रही है, और उस से भी काम चलते नहीं देख नलिनीदल पात उसने भेजा है। वह नख से लिखती है, इस का अर्थ यह है कि यह विरह से बिल्कुल दुबली हो गयी है—नख प्रान्त के मांस सूख चुके हैं, और अंगुली मानों शाही का कांटा बन चुका है। साथ ही, विरह क्षीणता के कारण वह ताटंक या अन्य आभूषण धारण करने की स्थिति में भी नहीं है। फलतः, यह 'नलिनि दल पात' ही पर लिखती है, जिस का उपयोग साहित्यिक संसार विरह-ज्वाला शमन के उद्देश्य से कराया करता है। अभिसारिका विदग्धा नायिका के रूप में राधा को चित्रित-करने में 'गिरां सन्दर्भशुद्धिम्' के एकमात्र जानकार के रूप में अपने को साहित्यिक संसार में प्रख्यात करने वाले संस्कृत के महाकवि जयदेव भी जहां निष्प्रयत्न रहे, वहां मैथिल कोकिल ने इस नवीन नायिका भेद का सरल-सुन्दर सृजन कर साहित्यिक संसार को एक नयी वस्तु दी है।

यह तो हुई साधारणतः पृष्ठभूमि' नख सओं लिखल नलिनि दल पात' की साहित्यिक परंपरा की। अब जरा 'लीखि पठाओल आखर सात' की पृष्ठ भूमि भी देखें।

संस्कृत साहित्य के विस्मृत-नामा रससिद्ध कवि लोठितक ने विरहिणी क्या लिखे, इस पर सुन्दर कल्पना की है। वे लिखते हैं कि :—

जीवामीति वियोगिनी यदि लिखेदत्रैव वृत्ताः कथाः
अद्य श्वोऽथ मरिष्यतीति मरणे कालात्ययः किंकृतः।
आगन्तव्यमिहेति संप्रति सखे संभावना निष्फला
सद्यः संप्रति याहि नास्ति लिखितं तद् ब्रूहि यत्ते क्षमम् ।।[१२]

अर्थात्—अगर विरहिणी यह लिख दे कि 'में जी रही हूं' तो यहीं पर कथा समाप्त हो जाती है। अगर वह यह लिखती है कि 'आज या कल मर जायगी', तो प्रश्न उठता है कि काल-अतिक्रमण क्यों? यदि वह लिखे कि 'यहां आना' तो यह संभावना भी व्यर्थ होगी। इस लिए विरहिणी दूती से कहती है कि अभी तुरंत उन के पास चली जा। लिखने को कुछ नहीं है। जो तुझे उचित जँचे, वह कह देना।

संस्कृत के कवि लोठितक की बुद्धि जिस परिस्थिति में पहुँच कर कुंठित हो गयी थी, उस विषम परिस्थिति में कवि कोकिल की काकली मधुर गुंजार कर उठती है। कवि कोकिल कूक उठता है—'लीखि पठाओल आखर सात।'

अर्थात्—विरहिणी राधा ने सात अक्षर लिख भेजे—एक या दो अक्षर नहीं, गिन कर सात अक्षर लिख भेजे। या, यों भी समझ लीजिए कि उस ने जो लिखे थे गिनने पर उन में पूरे सात अक्षर निकले—न कम न वेश। कैसी अद्भुत पहेली है यह।

मैथिल कोकिल की प्रतिभा यहीं विश्राम नहीं लेती। यह इस रहस्य "आखर सात" का पूरा हुलिया लिखा डालती है।—'पहिलहि लिखलनि पहिल वसंत।....अर्थात्—सब से पहले राधा ने पहला वसंत लिखा। क्या अद्भुत बात है? विरहिणी राधा को सब से बड़ा खतरा है—पहले वसंत का। कवि की नायिका प्रियतम को पत्र लिखने चली है—'कुसुमित

[१२] सुभाषितावलि, (पीटर्सन) पृ० २०० श्लोक—११८६।

कानन कुंज बसी।' और उस को त्रास बना हुआ है, प्रथम वसंत का। विरह काल के वसंत का गुण-दोष अननुभूत रहने के कारण वह त्रास स्वाभाविक भी है। काम शास्त्रियों का उद्घोष है कि :—

> शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे प्रावृट्सु घनगर्जिते।
> वसन्ते च दिवा रात्रौ शरत्सु सरसः स्मरः॥

अर्थात्—शीत काल में रात में कामदेव सरस रहा करते हैं। ग्रीष्म में दिन में, बरसात में मेघ के गरजते समय, और वसंत तथा शरद् में दिन रात कामदेव सरस रहा करते हैं।

इसलिए, दिन रात काम के संताप को सहने में अपने को सर्वथा अक्षम पाने वाली राधा यदि आतंक बढ़ाने वाले वसंत का पहले निर्देश करती है, तो यह सर्वथा उपयुक्त ही तो है। जिस वसंत ने आते ही लोक-लाज तजबा कर अभिसार के लिए तैयार कर दिया, भला उस वसंत का त्रास कवि कोकिल की विदग्धा नायिका को न हो तो होगा भी किस को?

किंतु, महा कवि को इतने से ही संतोष नहीं, दूसरे ही लिखवा देते हैं तीसरे का अंत—"दीसरहिं लिखलनि तेसराक अन्त।' द्वैत वाद—प्रकृतिपुरुष वाद—में तीसरे का—माया जनित आवरण का—अंत—नाश—तो शाश्वत सत्य है ही। इस लिए, दार्शनिक भूमि मिथिला के इस महाकवि ने यदि नायिका द्वारा यह दृढ़ विश्वास प्रगट करा दिया कि इस विरह दुःख का अंत अवश्यंभावी है, तो 'ध्रुवो जीवति संगमः" के विश्वास पर उस का जीवित रहना भी परिपुष्ट हो जाता है। किंतु, चमत्कार तो इस में है कि वह "अनुज वसंत" नहीं लिख सकी। लिखे भी तो कैसे? विरहज्वाला को ठीक-ठीक मापने का आज तक कोई उपकरण भी तो नहीं बन सका है! किंतु, सब से बड़ी पहेली तो यह है कि सब से पहले पहिल वसंत के लिखे जाने पर भी पत्र में पहला पद ही जीव का अंत है। केवल तीन ही प्रयासों में "आखर सात" लिखना और उसमें भी "पहिलहि पद अछि जीवक अन्त" लिखा रहना और भी अधिक चमत्कार पूर्ण है।

उचित अर्थ।

मैथिल कोकिल की इस अद्भुत प्रहेलिका का उचित अर्थ प्राप्त करने के प्रयास में जब कोई भी सहृदय व्यक्ति सही कदम उठायगा, तो उसे सब से पहले उक्त प्रहेलिका में ही अपने को अधिकाधिक सीमित रखना पड़ेगा। तभी संभव हो सकेगा—प्रहेलिका का वास्तविक अर्थ निकाल लेना। और, इस दृष्टि से भी विचार करते समय, मेरे खयाल से, दो पूर्ण प्रयासों एवं एक अपूर्ण प्रयास, इन तीन प्रयासों में ही "आखर सात" का लिखा जाना पहले हृदयंगम किया जाना चाहिए। और, यह भी ध्यान में सतत रखना चाहिए कि कवि कोकिल के प्रत्येक अक्षर में रहस्य निगूढ़ रखने का सुंदर प्रयास किया हुआ है। कवि कोकिल के इस प्रहेलिका पद का अन्वय करते समय यदि प्रत्येक प्रयास के सूचक पद के साथ आखर शब्द का अन्वय किया जाय तो ऐसा स्पष्ट अर्थ निकल जाता है कि पहले ही अक्षर में राधा ने "पहिल वसंत" लिख दिया था। 'मधुमाधवयोर् वसन्तः" "इस सर्व संमत सिद्धांत के अनुसार" पहिल वसंत" मधु आता है ही। और "पहिल" पद में तन्त्र वा एकशेष मान लिया जाय, अथवा उक्त पद की आवृत्ति मान ली जाय, तो कवि कोकिल की विदग्धा नायिका द्वारा पहले पहल प्रथम वसंत के पहला—म'—का लिखा जाना स्पष्ट सिद्ध होता है। और, इसी पद्धति से 'तेसराक अंत" में भी अंत पद से अंत का—अंत—अर्थात्—वसंत से तीसरे के अंत में आने-वाले' शरद" का अंत्य अक्षर—'द'—का लिखा जाना भी स्पष्ट हो जाता है। और, तीसरा अक्षर लिखे जाने के बारे में महाकवि का कथन है कि—"लिखि नहिं सकली अनुज वसंत"। अर्थात् राधा वसंत के अनुज अर्थात् बाद में होने वाले 'निदाघ' का आखर "नि" भी लिख नहीं सकी। तान्त्रिक मिथिला से आज भी यह छिपा नहीं है कि मात्रा रूपिणी शक्ति, किं वा शक्ति रूपिणी मात्रा, शव रूपी अक्षर—व्यंजन—पर आरूढ़ रहा करती है,—जिस के आधार पर मात्रा इकार के आधारभूत 'न' का प्रथम लिखा जाना शास्त्रीय औचित्य रखा करता है—जिस के परिणाम स्वरूप 'नि' लिखने में अक्षमा राधा ने तीसरा आखर, 'न', अवश्य लिखा रहा होगा। इस तरह यह सिद्ध हो गया कि अक्षर लिखने के प्रथम तीन प्रयासों में राधा

ने यथाक्रम––म–द–न, इन तीन अक्षरों को लिख डाला। किंतु, इस संबंध में यह कथमपि न भूल जाना चाहिए कि तीसरे अक्षर के लिखन प्रयास में वह सक नहीं सकी थी। क्योंकि, इसे भूल जाने पर आगे का अर्थ निकालना महा-कठिन बन जायगा।

कहना न होगा कि महाकवि की दिव्य प्रतिभा ने जब यह देखा कि विरह विह्वला राधा द्वारा 'लंबा ढढ्ढर' लिखवा भेजंना अनौचित्यपूर्ण होगा, इस लिए, तीसरे आखर के लिखन प्रयास को भी अधूरा ही रख छोड़ा जाय; और, वैसा ही औचित्य के अनुरोध से कर भी लिख-लाया, तब यह असमंजस आ खड़ा हुआ कि 'इतने से ही तो काम बनता नहीं है?' तो, उसने दूर की देखी, और, इस प्रहेलिका पद को और भी अत्यधिक चमत्कार पूर्ण बना छोड़ने के उद्देश्य से उसने "सात", अर्थात् सात का अंक लिखवा दिया। और, इस तरह इस प्रहेलिका पद को साहित्यिक सौन्दर्य की चोटी पर बिठला दिया।

सात का अलौकिक सौन्दर्य।

मैथिल कोकिल ने 'लीखि पठाओल आखर सात' लिखते हुए संकेत-लिपि के संहारे "आखर ––तीन अक्षर––म–द–न, तथा सात––'७' लिख भेजे जाने का जो स्पष्ट रहते भी अस्पष्ट संकेत किया है, वही वस्तुत: पहेली है। आदि कवि वाल्मीकि के चतुर्थ रूप कवि-शेखर राजशेखर ने, जिन के संबंध में यह श्लोक प्रसिद्ध है कि :—

वभूव वल्मीकभव: कवि: पुरा
तत: प्रपेदे भुवि भर्त्तृमेण्ठताम्।
स्थित: पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखर:।।[13]

अर्थात्—प्राचीन काल में एक कवि वाल्मीकि हुए थे। दूसरे जन्म में वे ही भर्तृमेण्ठ हुए थे। और फिर वही भवभूति के रूप में आये। और वही इन दिनों राजशेखर के रूप में हैं।

अपने ग्रन्थ––काव्य मीमांसा––में जिसे 'वाक्केलि" की संज्ञा दी है, उस के सृजन में सांकेतिक लिपि––कोड राइटिंग––का इस प्रकार प्रयोग भूषण ही माना जायगा।

आलंकारिक परंपरा के पण्डितों से यह बात भी छिपी नहीं होनी चाहिए कि कवि कोकिल की नायिका का यह निर्व्याज प्रेम स्तम्भ, स्वेद आदि सात्विक भावों में सप्तम––अस्रु––में परिणत हो चुका है, जिस का यह ७ का अंक संकेत करता है। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि नायिका का पत्र लेखन प्रयास प्रियतम संस्मरण जनित अस्रु प्रवाह के उद्‌गम से विफल हो गया होगा, जिस का आभास ही नहीं, अपितु पूर्ण संभावना महाकवि के "लिखि नहि सकली अनुज वसंत' से स्पष्ट है। कवि कुल गुरु कालिदास का विरही यक्ष भी तो' धातु राग से शिला पर चित्र खींच कर चरण पतन द्वारा क्षमा याचना' इसी रोग से नहीं कर पा सका था, जिस की चर्चा मेघदूत के :––

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागै: शिलाया––
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम्।
अस्रै: तावन् मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्त:।।[14]

––इस श्लोक में हम स्पष्ट पाते ही हैं। फिर, निसर्गकोमला कवि कोकिल की नायिका यदि पूरा पत्र लिख नहीं सकी, तो यह भी एक भूषण ही है। क्योंकि, कवि कोकिल की यह स्पष्ट मान्यता रहीं है कि विरहिणी की आंख में विधाता ने सदा के लिए बरसात ही लिख दिया है—'विरहिनि नयन विहल विधि रे, अविरल बरिसात'।[15] फिर, विधाताके विधान

---

[13] राजशेखर प्रशंसा परक समकालीन कविका पद्य

[14] मेघदूत, उत्तरमेघ, ४२।

[15] विद्यापति की पदावली (कुमारगंगानन्द सिंह संशोधित, वेनीपुरी संस्करण, पद २०७) पृ० २७०

को यह महाकवि ही कैसे भला झुठलाने का साहस भी करता ? यह हो सकता है कि अलंकार शास्त्रीय मर्यादा के पुरावृत्त के पण्डित इस का कुछ दूसरा ही अर्थ करें, किंतु, मैं तो यही जानता हूं कि विरहिणी का यह 'रुदन योग' उसकी प्रणय साधना का एक प्रमुख अंग है, जिसकी निरन्तर साधना के द्वारा ही यह पांचभौतिक शरीर कायम भी रखा जा सकता है। आलंकारिकों की यह मर्यादा रही है कि विरह की आग से रूई सदृश यह शरीर जो सांस की हवा द्वारा उक्त आग के निरंतर प्रज्वालन होते रहने पर भी नहीं जल जाता है, उसमें कारण यह अश्रु प्रवाह ही माना गया है। अवधी भाषा के स्वनामधन्य कवि संत तुलसी दास जी ने भी तो माता सीता के विरह वर्णन प्रसंग में यह लिखना नहीं भूला है कि :—

"विरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन मांहि सरीरा।
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी।
जरें न पाव देह विरहागी।।"[१६]

यदि इस निबंध के पाठकों को इतने पर भी संतोष नहीं हुआ हो, तो मैं कवि कोकिल की इस नायिका की यथार्थ अवस्थिति का ठीक-ठीक अनुमान कराने के लिए कवि कोकिल का ही एक दूसरा पद यहां उद्धृत करूंगा, जिस में 'कुसुमित कानन' देखने मात्र से उस की अवस्थिति का चित्र कृष्ण के समक्ष दूती द्वारा महाकवि विद्यापति ने ही स्वयं खिंचवाया है। पद इस प्रकार है :—

कुसुमित कानन हेरि कमल मुखि, मूंदि रहए दु नयान।
कोकिल कलरव मधुकर धुनि सुनि, कर दए झांपए कान।।
माधव सुन सुन वचन हमार।
तुअ गुने सुंदरि अति भेलि दूबरि, गुनि गुनि प्रेम तोहार।।
धरनी धरि धनि कत बेरि बैठइ, पुन तहि उठए न पार।
कातर दिठि करि चौदिशि हेरि हेरि, नयन गलए जल धार।।
तोहरे विरहे दिन खने खने तनु खिन, चौदशि चान समान।
भनहि विद्यापति शिव सिंह नरपति, लखिमा देवि परमान।।"[१७]

अर्थात्—कमलमुखी राधा कुसुमित कानन देख कर दोनों आंखें बंद कर लेती है। कोयल की कूक और भोंरे की ध्वनि सुन कर हाथ से कान ढक लेती है। दूती कहती है कि हे माधव, मेरी बात सुनिए। तुम्हारे चलते सुंदरी तेरे प्रेम का स्मरण कर कर अत्यन्त दुबली हो गयी है। वह धनी धरती थाम कर कितने बार बैठती है, किंतु फिर वहां से उठ नहीं पाती है। वह कातर दृष्टि से चारो ओर देखा करती है और आंख से जल—नोर—की धारा फूट पड़ती है। हे माधव, तुम्हारे विरह में दुखी हो कर क्षण क्षण में उस का शरीर क्षीण होता गया है, और वह चतुर्दशी की चन्द्र कला जैसी हो गयी है!.......।

मेरी निजी मान्यता है कि जिस नायिका की स्थिति कुसुमित कानन के दर्शन मात्र से चतुर्दशी तिथि की चन्द्र कला के समान कवि कोकिल ने स्वयं बतायी, उस नायिका के कुसुमित कानन बास काल में इतनी शारीरिक दृढ़ता बता डालते कि जिस में वह लम्वी-चौड़ी ढढ्ढर लिख मारती, तो वह कवि कोकिल की प्रतिभा के अनुरूप कथमपि नहीं हो पाता।

साथ ही, यह भी मानने को जी नहीं करता कि जो बराबर रोते रहना विरहिणी का स्वभाव मान चुका है, और जो कुसुमित कानन के दर्शन मात्र से 'नयन गलए जलधार' लिख चुका हो, वह कुसुमित कानन बास काल में प्रियतम के संस्मरण मात्र से नायिका का रो देना बताना भूल जाय, और एक दो नहीं पूरे सात अक्षरों वाली चिट्ठी लिखवा दे।

सात की सांकेतिकता।

---

१६ राम चरित मानस (गीताप्रेस संस्करण), सुन्दरकांड, ३०।८-६।
१७ गुप्तसंस्करण (वसुमती) विरह० पदसं० १६।

भारतीय संकेत विद्या के पण्डितों से यह भी छिपा नहीं रहना चाहिए कि सप्ताक्षर या सात की संख्या का कितना अधिक महत्व है। ब्रह्मचारी के लिए सप्ताक्षर भिक्षा का सप्ताक्षरां चरेद् भिक्षाम्''[१८] के द्वारा विधान किया है; और, जिस से यह सप्ताक्षर भिक्षा मांगी जाय उस के लिए भी भगवान मनु ने कहा है कि 'या चैनं नावमानयेत्'।[१९] अर्थात् वह भी उसकी अवमानना नहीं करे। व्यावहारिक जगत् में भी 'तीन सत्य और सात शपथ' की बात सभी जानते हैं। इस लिए यदि कवि कोकिल नें' पत्र की अवमानना नहीं की जाने की आशा और उस के साथ ही सात सौगंधों की आकृति बतला कर अपनी प्रखर विदग्धता का परिचय दिया, तो वह भी भूषण ही माना जायगा, दूषण नहीं।

इस के अतिरिक्त, अग्नि, वायु और रवि के दुग्ध स्वरूप ऋक्, यजु: और साम के भी सार भूत 'ओम्' के अकार, उकार और मकार इस त्रितत्वीय अथवा त्र्यक्षर––समूह का जिस प्रकार ज्ञान काण्ड में महत्व माना गया है, उसी प्रकार, नादातीत, नाद, विंन्दतीत, विन्दु, इन चार विशेष तत्वों के साथ अकार, उकार और मकार––इन साततत्वीय वा सप्ताक्षरीय प्रणव का क्रियाकाण्ड में विशेष महत्व है ही। और, इस दृष्टि से भी विशेष प्रभाव-कारिता लाने के लिए पत्र में सप्ताक्षरता लाने का प्रयास भी आगमिक वैदुष्य से भरा हुआ है।

इस लिए, यह सारांशत: कहना कवि कोकिल की विवक्षा के सर्वथा सन्निकट माना जायगा कि 'मदन सतावए' इन सात अक्षरों वाला पत्र कवि की अभिसारिका विदग्धा नायिका ने नायक के पास लिख भेजा था। इसके प्रथम आखर––'म' को पद अर्थात् अर्थवोधक एकक––यूनिट ––के रूप में मान लेने से 'जीव का अंत' अर्थात्–मृत्यु, यम का लिखा रहना बतलाना भी पुष्ट हो जाता है।

विदग्ध समर्थन।

इस अर्थ का कवि कोकिल के ही उक्त पद से विदग्धता पूर्ण प्रकारांतर से सर्वथा समर्थन होता है, जिस की पद्धति भी पाठकों के विनोदार्थ यहां दी जाती है।

कवि कोकिल ने स्वयं लिखा है कि :–'लीखि पठाओल आखर सात।' भाषा-विज्ञान के अनुसार जिस प्रकार अक्षर से आखर बनेगा ठीक उसी प्रकार बन जायगा 'आक्षर' से भी। इस लिए संस्कृत––आक्षर––से आखर बना कर अर्थ कर के देखें, तो स्पष्ट चमत्कार दीखेगा।

गीता में भगवान ने लिखा है कि :––

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु: परमां गतिम्।।[२०]

अर्थात्––अव्यक्त को अक्षर कहा गया है, और उसे ही परम गति माना गया है।

और, इस अक्षर, अव्यक्त, ब्रह्म के पूर्णावतार भगवान कृष्ण के पुत्र को, अक्षर शब्द से शैषिक अण् कर निष्पन्न आक्षर शब्द का अर्थ कहना सर्वथा शास्त्र संमत होगा। भगवान कृष्ण चन्द्र के एक पुत्र––प्रद्युम्न को मदनावतार के रूप में पौराणिक पण्डित मानते हैं ही। इस लिए, आखर शब्द का अर्थ हो गया––मदन। और, 'सात' का अर्थ है––साल––सालए ––सतावए। मैथिली 'साल' का प्रयोग कवि कोकिल ने सताने के अर्थ में :––

'मन मथ मन मथ सब तहु, से सुनि हिय मोर साल।
बालमु हमर विदेस बस, तओ अनुखन भेल काल।।'[२१]

––में किया ही है। भाषा शास्त्र के पण्डित यह जानते हैं कि 'त' और 'ल' में उच्चारण स्थान प्रयत्न कृत साम्य अत्यधिक हुआ करता है। दक्षिण भारत के एक क्षेत्र में आज भी अन्त्य और हलन्त 'त' का उच्चारण 'ल' के रूप में किया जाता है, और उस क्षेत्र के लोग 'महेश्वरात्' की 'महेश्वराल्' 'और' कृत्स्नम्' को 'कुलस्त्नम्' उच्चारण किया करते हैं। यह

[१८] स्मृति शिष्ट परिगृहीत।
[१९] मनुस्मृति, २अ० ५० श्लोक।
[२०] गीता, अ० ८ श्लोक २१।
[२१] गुप्त संस्करण, विरह० पद सं० १००।

पद्धति अशास्त्रीय कथमपि नहीं, अपितु, वैयाकरण संप्रदायानुमोदित ही है। सारस्वत व्याकरण में 'तोलि लः'[२२] तथा पाणिनि व्याकरण में तोलि'[२३] सूत्र इस का स्पष्ट प्रमाण है।

इस लिए, इस व्याख्यान्तर से भी उक्त अर्थ की ही पुष्टि होती है।

दूसरी प्रहेलिका।

अब, जरा कवि कोकिल की दूसरी प्रहेलिका का रसास्वादन करें। यहां भी कवि कोकिल ने 'आखर लेख' का खुल कर प्रयोग किया था। किंतु, उस का यथार्थ ज्ञान टीकाकारों में नहीं रहने का कारण उस का भी उल्टा-सीधा अर्थ करने में टीकाकारों ने कोई कसर उठा नहीं रखा है। पद इस प्रकार है :—

प्रथम एकादश दए पहु गेल।
सेहो रे वितल कतेक दिन भेल।।
ऋतु अवतार बएस मोर भेल।
तइओ न पहु मोर दरसन देल।।
चान किरन मोहि सहलो ने जाए।
चानन शीतल मोहि न सोहाए।।
भनइ विद्यापति सुनु ब्रज नारि।
धैरज धए रहु मिलत मुरारि।।[२४]

अर्थात्—विरहिणी ब्रज वाला कहती है कि एक में एगारह दे कर प्रभु मेरे गये थे। उसे बीते भी कितने दिन गुजर गये। अब मेरी अवस्था ऋतु अवतार की हो चली है। फिर भी प्रभु ने मुझे दर्शन नहीं दिया है। आज चन्द्रमा की किरणें मुझे सही नहीं जातीं। शीतल चन्दन भी मुझे आज सोहाता नहीं है। विद्यापति कहते हैं कि ऐं ब्रज नारी, सुनो। धैर्य धारण किये रहो। मुरारि मिलेंगे।

इस पद में 'एक में एगारह देना' बारह संख्या का और 'ऋतु' से ६ और 'अवतार' से १० का संकेत स्पष्ट है। इस लिए नायिका का अभिप्राय भी सर्वथा स्पष्ट है कि मेरे प्रभु बारह बरस की अवस्था में मुझे छोड़ गये थे और अब मेरी अवस्था सोलह बरसों की हो चली है। किंतु, इस सीधे से अर्थ वाले पद का अर्थ करने में टीकाकारों ने पाण्डित्य-प्रकर्ष का, अकारण, अस्थाने, प्रदर्शन करना प्रारंभ कर दिया। ऐसे पण्डितों ने इतना तूल करना प्रारंभ कर दिया कि उस के परिणाम स्वरूप पद के सभी अर्थ असंगत तथा काक-दंत-परीक्षा-वत् निष्फल हो चले हैं। यह तो स्पष्ट है कि इस पद में 'प्रथम एकादश' और 'ऋतु अवतार' ये दो ही वाक्यांश प्रहेलिका के हैं। इन के संबंध में यदि व्याख्या-कारों ने एक ही विधि अपनाने की सुबुद्धि दिखलायी होती, तो ऐसा काण्ड हुआ ही नहीं होता।

अन्य टीका कारों के अर्थ।

विद्यापति पदावली के सब से अधिक परिश्रम कर संपादन करने में अग्रणी स्वर्गीय नगेन्द्र नाथ गुप्त ने इस प्रहेलिका-पद का अर्थ करते हुए लिखा है कि:—प्रथम—व्यंजन वर्णेर प्रथम अक्षर, क; एकादश—एकादश अक्षर, ट; कट-कथा, प्रतिश्रुति।........प्रभु (आमा के) कथा (फिरिया आसिबार समय निर्देश) दिया गेल, ताहा ओ कत दिन अतीत हइल। ऋतु—६ (ऋतु); अवतार—१० (अवतार); ६+१०=१६। आमार षोड़श (वर्ष) वयस हइल, तथापि प्रभु आमाके दर्शन दिल ना।.........।[२५]

अर्थात्—प्रथम अर्थात्—व्यंजन वर्ण का प्रथम अक्षर, क; एकादश अक्षर, ट; कट—वादा, वचन, प्रतिश्रुति।.......प्रभु हमें वादा (लौट जाने का समय निर्देश) दे गये थे। उसे बीते हुए भी कितने दिन बीत चले। ऋतु—६; अवतार—१०;........हमारी वयस सोलह साल की हो चली है। फिर भी प्रभु ने मुझे दर्शन नहीं दिया।

---

[२२] व्यंजन संधि, सूत्र सं० ८।
[२३] अष्टाध्यायी सूत्रपाठ ८।४।३०
[२४] विद्यापति पदावली, गुप्त सं० पृ० २४३ पद सं० २।
[२५] विद्यापति, वसुमती संस्करण, पृ० २४३।

इस अर्थ के मानने में सबसे बड़ा असमंजस यह उपस्थित होता है कि यदि 'प्रथम एकादश' का अर्थ कट (वादा) मान भी लिया जाय, तो तुल्यन्यायात् 'ऋतु अवतार' का अर्थ भी ऋतु --व्यंजन वर्णों में छठा, च, अवतार--१०, दशम व्यंजन वर्ण, ञ--चञ होगा। फिर चञ वर्षों की ब्रज नारी का उक्त कथन उचित ही कैसे भला माना जा सकेगा? यह तो हुआ गुप्तजी का अर्थ। अब जरा ब्रज वल्लभ जी का पद पाठ और अर्थ, दोनों देखें। उन का पाठ इस प्रकार है :--

प्रथम एकादश दए पहु गेल। से हो बेतित कत दिन भेल।
रति अवतार वयस मोर भेल। तइयो ने पहु-मोर दरसन देल।।
अब न धरम सखि हे बांचत मोर। दिन दिन मदन दुगुन सर जोर।।
चान सुरुज मोहि सहिओ न होए। चानन लाग विषम सर सोए।।
भनहि विद्यापति गुनमति नारि। धैरज धए रहु मिलत मुरारि।।[२६]

इस पाठ में 'ऋतु अवतार' के स्थान पर 'रति अवतार' पाठ मान कर 'रति....भेल' पद का अर्थ किया गया है कि 'मेरे शरीर में यौवन के चिह्न प्रगट हुए हैं। किंतु, रति के अवतार, अर्थात् उतरने का वयस बतलाना अरसिकता के साथ ही वार्धक्य का सूचन भी करने के कारण "विरुद्धमतिकारिता दोष" से दूषित भी प्रतीत होता है। साथ ही, रति अवतार से नायिका के वय:क्रम का ठीक-ठीक पता भी नहीं चल पाता है। इस लिए, ऋतु अवतार पढ़ना ही सर्वथा उचित जंचता है। केवल इतना ही नहीं, 'अब न धरम सखि बांचत मोर। दिन दिन मदन दुगुन सर जोर'। अर्थात्--हे सखी, अब मेरा धर्म--सतीत्व--नहीं बचेगा। क्योंकि दिन पर दिन काम देव दूना सर संधान करने लगा है,--यह जोड़ना जहां स्वाभाविक सा दीखता है, वहां चान-सुरुज की असह्यता बतलाना कवि समय विरुद्ध वात है। कारण, आलंकारिकों ने चन्द्रोदय को कामोद्दीपक तो माना है, किंतु सूर्य की कामोद्दीपकता आज तक कहीं भी नहीं सुनी गयी है। चन्द्रमा सूर्य बन गया है, और वह सहा नहीं जाता, इस प्रकार विलष्ट कल्पना करने की अपेक्षा 'चान किरन'....वाला पाठ ही मान लेगा अधिक आसान रहेगा।

इसी प्रकार, 'दिन दिन मदन दुगुन सर जोर' कहने के बाद 'चानन लाग विषम सर सोए' कहना भी कुछ आवश्यक नहीं रह जाता। कहना न होगा कि कवि कोकिल विद्यापति की यह मध्या नायिका अपने विरहानुभव को अपनी सखी के समक्ष प्रकट करती है। इस नायिका की उक्ति में वैदग्धी विशेषातिशय की आकांक्षा करना भी असहृदयता का प्रतीक हो जायगा, जिधर जितना अधिक ध्यान दिया जाय उतना अधिक स्वाभाविकता आयगी।

तीसरी प्रहेलिका।

मैथिल कोकिल की एक और प्रहेलिका पर दृष्टि डालें। इस में दूती नायक के पास जा कर सखी की विरहावस्था का वर्णन करती दिखाई गयी है। पद इस प्रकार है :--

ए हरि, ए हरि, कर समधान।
तुअ बिनु करति भुवन ऋतु पान।।
पचिस अठारह हरि तनु जार।
छिति सुत तेसर नाम बरु मार।।
छओ अठाहर हरि सम लाग।
खतखतिआ जकें मलयज जाग।।
पहिल पचीस अठाइस लेव।
तासओ वदन हेम हरि देव।।
हरि वाहन भख तइसन हार।
कुच जुग भेल महीधर भार।।
अछल हीत जत तत कर दंद।
विधि विपरीत सवए भउ मंद।।

[२६] मैथिल कोकिल विद्यापति (नवीन सं० २००६ वि०) पृ० ३३२, पद सं० ३५।

नयन सिंगार बाहु लिखि राख।
करति वरन रवि शिव शिव भाख।।
भनइ विद्यापति आखर लेख।
वुध जन हो से कहए विशेख।।[२७]

अर्थात्--दूती कहती है कि हे कृष्ण, समधान कीजिए--उपाय कीजिए। क्योंकि तुम्हारे बिना वह नायिका--राधा--भुवन और ऋतु का पान कर लेगी। अर्थात्--भुवन--१४ और ऋतु--६; जोड़--२० विष का पान कर लेगी। उसे पचीस में अठारह का भाग देकर शेष, सात, अर्थात् सातवां सात्विक भाव--रुदन शरीर को जला रहा है। अर्थात्--रोते रोते शरीर जला करता है। यही नहीं, छिति--१, सुत--५ के तीसरे का नाम भी मार रहा है। अर्थात्--५ और १, जोड़ ६, अर्थात्--षड् ऋतुओं में तीसरे--वरसात--का नाम भी प्राण ले रहा है। और अठारह और ६, जोड़ २४, अर्थात्--चतुर्विशति तत्वात्मक शरीर भी--हरि अर्थात् बाघ के समान लगता है--काटने दौड़ता है। चन्दन खत-खटिआ संस्कृत--क्षत खटीका; हिन्दी--अगिया खढ़, जैसा लगता है। अर्थात्--अगिया घास जिस प्रकार वदन में लगने से जलन पैदा करता है, उसी प्रकार चन्दन भी संताप ही पैदा करता है। एक में पचीस तथा अठाइस मिला कर जोड़ चौवन में वदन--१, तथा हेम अर्थात् स्वर्ण धातु--८, जोड़ १८ का भाग लेकर संख्या लेवें। अर्थात्--संप्रति नायिका का वयः-क्रम १८ वर्षों का है। उस के लिए हार भी हरिवाहन अर्थात् विष्णु के वाहन गरुड़ के भख भक्ष्य, सांप, के समान हो रही है। और दोनों स्तन पहाड़ के समान भार बन गये हैं। यही नहीं, जो जो भी हित थे वे सभी के सभी द्वन्द्व--दुःख कर हो गये हैं। क्योंकि, विधाता के विमुख हो जाने पर सभी अच्छे बुरे बन जाते हैं। दूती कहती है कि हे माधव, आप लिख रखें,--अर्थात् निश्चय जान लें कि यह नयन--२, सिंगार--१६, बाहु--२, कुल जोड़ २०--विष का भक्षण कर रवि--१२, शिव--११, शिव--११ कुल ३४ अर्थात् आलंकारिकों के ३३ भावों से आगे का भाव --मृत्यु का वरण करेगी। विद्यापति कहते हैं कि इस आखर लेख का जो वुध जन होगा, वह विशेष कहेगा।

सारांश यह कि १८ वर्षों की यह युवती नायक के विरह में तड़प रही है और उस ने दूती के द्वारा यह संवाद भेज दिया है कि यदि नायक का मिलन नहीं होगा तो विष पान कर मर जाऊंगी।

यौगिक तथा तांत्रिक विश्लेषण।

कहना न होगा कि यहां नायिका द्वारा विष पान कर मृत्यु के अपनाने के निश्चय को विशेषतः ध्यान में लाने के उद्देश्य से उपसंहार वाक्य में भी उसे रूपान्तर से प्रतिपादित किया गया है, जो कवि निबद्ध वक्त्री--दूतीके, प्ररूढ़ बैदग्ध्य का सूचन करता हुआ एक प्रकार से महान् गुण बन गया है। और, यहां कवि निवद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध विषपान पूर्वक मरण निश्चय रूप वस्तु से करुण विप्रलंभ नामक रस विशेष की ध्वनि होने से यह काव्य प्रहेलिका होते हुए भी 'उत्तम काव्य' है।

फिर भी, यदि इस में उद्दीपन विभाव आदि कुछ एक अस्पष्ट कारण-कलाप की जिज्ञासा शांत करना इस प्रहेलिका के माध्यम से ही अभीष्ट हो, तो वह भी आसान होगा। क्योंकि कवि कोकिल ने उस के लिए भी पर्याप्त समावेश रख छोड़ा है।

यह तो ऊपर बताया जा चुका है कि नायिका की अवस्था उस समय १८ वर्षों की थी। इस से अधिक की जानकारी प्राप्त करने के लिए यौगिक और तान्त्रिक पद्धतियों का सहारा लेना आवश्यक होगा। इस लिए, सर्व प्रथम, विरह आरंभ के काल का पता तो कर लें। कवि कोकिल लिखते हैं कि :--पचिस अठारह हरि तनु जार। अर्थात्--पचीस, अठारह, हरि--विष्णु के अवतारों की संख्या, १०, तनु--१, सर्वैकत्वेन ५४, अर्थात् चौवन दिनों का होने वाला ऋतु--शरद--जला रहा है। अर्थात्--शरद से ही विरह ज्वाला प्रारंभ हुई

[२७] गुप्त संस्करण, पृष्ठ २८६, पद सं० ७१८।

है। और हेमन्त में वह दिन काट रही थी, इस का भी स्पष्ट संकेत इसी प्रहेलिका पद में मिलता है। पद में स्पष्ट मिलता है कि :--पहिल पचीस अठादस लेब। ता गवो वदन हेम हरि देव।। अर्थात्--पहले पचीस और अठारह लीजिएगा। और उग में वदन--१, हेम--स्वर्ण धातु--८ और हरि--१० दे देना। २५, २८, १, ८, १०=७२। और ७२ दिनों का हेमन्त हुआ करता है, जिस में कवि का कथन है कि हार सांप और स्तन पर्वत-सा भार बन रहे हैं। इतना ही नहीं, पद में यह स्पष्ट है कि यह अगले शरद-काल में विष पान कर लेगी। 'नयन सिंगार बाहु लिखि राख। करति वरन रवि शिव शिव भाख।। नयन--२, सिंगार--श्रृंगार--१६, बाहु--२, रवि--१२, शिव--११, शिव--११, इन संख्याओं का कुल जोड़ भी ५४ हो ही जाता है। और वैशालेय जैनों की ऋतु गणना पद्धति मे 'छिति सुत तेसर', हेमन्त आदि क्रम से वसंत, का नाम भी आ ही जाता है। फलत:, आलंकारिकों का विरही जन-मारात्मक ऋतु द्वय नायिका के लिए बना होना भी सिद्ध हो जाता है।

कालिदास और कवि कोकिल।

इस संबंध में मेरी निजी मान्यता यह है कि मैथिल कवि कुल गुरु कालिदास की परंपरा में ही इस मैथिल कवि कोकिल ने भी उक्त रचना की थी, जिस में रचनोत्कर्ष से 'मधुरमाद्री कालिदास सूक्ति' से भी कवि कोकिल की प्रहेलिका-काकली अधिक श्रुति-मनोहर हो चली है।

यहां यह भी कम चमत्कार पूर्ण नहीं कि कवि कुल गुरु कालिदास का मेघदूत जहां विरही-विरहिणी मनोभाव-विज्ञान की कसौटी पर उतना खरा नहीं उतर पाता जितना कवि कोकिल का यह प्रहेलिका पद आता है, वहां नि:संदेह रूप से कवि कोकिल कवि कुल गुरु से उत्प्राणित प्रमाणित होते हैं।

उदाहरण स्वरूप, कवि कुल गुरु का 'वर्ष भोग्य शाप' भी संभवत: शरद से ही प्रारंभ होता है। क्योंकि, '.......कान्ता विरह गुरुणा स्वाधिकारप्रमत्त:, शापेनास्तंगमित महिमा वर्ष-भोग्येण भर्तु:'[२८] यक्षने स्वयं अपने मुंह से कह दिया है कि' शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ[२९] 'जिस से स्पष्ट है कि "देवोत्थान" के बाद वर्ष व्यापक कान्ता विरह शाप का अंत होगा। यही नहीं, कवि कुल गुरु कालिदास का "संवेक्ष्याव: परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु[३०]" भी यह स्पष्ट कह ही देता है कि शापान्त के बाद शरद की चांदनी वाली रातों में वह 'मिलन पर्व' मनायगा।

मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि दोनों कवि के मिथिलाभिजन होने के कारण शरद में "सुरुका धान का चूड़ा" और "फोंका मखान" के सुमधुर रसास्वाद से जनित आन्तर रसोद्रेक से दोनों ही अतिशय प्रभावित रहे, जिस के फल स्वरूप दोनों ने ही समान रूप से शरद से ही विरह का श्रीगणेश किया था।

यह बिल्कुल दूसरी बात है कि कवि कुल गुरु कालिदास का विरही यक्ष अधिकार प्रमत्त हो कर भर्त्ता द्वारा वर्ष भोग्य शाप का शिकार होता हुआ भी नायिका को संदेश भेजते समय "कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दु:खमेकान्ततो वा नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।[३१]" कह कर यह ढाढ़स बंधाते देखा गया है कि 'दु:ख और सुख दोनों भाई के समान हैं। कभी दु:ख आता है तो कभी सुख। क्यों कि, किंसी को भी बराबर न कभी सुख ही मिला है, और न बराबर केवल दु:ख ही। इस लिए, इस विरह दु:ख से निराशा की कोई आवश्यकता नहीं है। चार महीने के बाद तो सुख ही रहेगा।' वहां, मैथिल कवि कोकिल विद्यापति ने इस से अधिक मार्मिक शब्दों में अपनी बिल्कुल निर्दोषिता बताते हुए यह कहलवा दिया है कि:--अछल हीत जत तत कर दंद। विधि विपरीत सबए भउ मंद। अर्थात्--जो जितना ही हित था वह उतना ही विरुद्ध हो चला है। विधाता के विपरीत हो जाने से सभी अच्छे बुरे हो गये हैं। इस लिए,

[२८] मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक १।

[२९] वहीं, उत्तरमेघ, ४७।

[३०] वहीं, उत्तरमेघ, ४७।

[३१] वहीं, उत्तरमेघ, ४६।

यह कहना भी असामयिक नहीं होगा कि महाकवि कालिदास के विरही यक्ष के मन में जहाँ प्रतिशोध की भावना अथवा भर्त्ता के प्रति विद्रोह की भावना अन्तर्निहित दीखती है वहां इस कवि कोकिल की नायिका के अंदर विशुद्ध दुर्भाग्य सूचक आत्मनिर्वेद की भावना स्पष्ट है, जो करुण विप्रलंभ शृंगार का अधिकाधिक परिपोषण ही करता है।

अस्तु,

इसी पद से विरहिणी के विरह की गंभीरता का अनुमान करना अभिप्रेत हो, तो तान्त्रिक पद्धति की शरण में चलें। वह स्पष्ट कर देगा कि कितना गहरा विरह वेदन नायिका का रहा है।

ऊपर 'पचिस अठारह हरि तनु जार' से ५४ संख्या निकाल ५४ दिनों वाला ऋतुकाल शरद निकाला गया था। अब तान्त्रिक षट्चक्र भेदन पद्धति के आधार पर उक्त ५४ संख्या से अनाहत चक्र का संकेत मानिए, जिस में तान्त्रिक सिद्धान्तानुसार पंचाशत् वर्ण, और यं, रं, लं, वं, इन चार वर्ण बीजों के साथ कुल चौवन वर्ण वायु तत्व के प्रतीक माने गये हैं, और जिसे नारायणी शक्ति का अधिष्ठान रहने के कारण विष्णु ग्रन्थि भी कहा जाता है। कवि कोकिल के इस संकेताक्षर प्रयोग का यहां यह भी एक अर्थ अनुमान करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि नायिका का प्रेम इतना गंभीर है कि "हे माधव, हे माधव," का अनाहत नाद उस के अन्दर हो रहा है। तात्पर्य यह कि उस के अन्तस्तल से अनायास हे माधव, हे माधव, का शब्द निकला करता है।

न केवल इतना ही, कवि कोकिल का यह पद कि:—पहिल पचीस अठाइस लेव। ता सओ वदन हेम हरि देव। जिस से ७२ संख्या निकालने की पद्धति ऊपर बतायी चुकी है, उक्त अनाहत चक्र से ऊपर भी विशुद्धाख्य चक्र का संकेत करता है जिस का अभिप्राय यह है कि अनाहत चक्र अथवा विष्णु ग्रन्थि भेदन कर प्रेम विशुद्ध भाव पा गया है जिस विशुद्ध चक्र में अकारादि १४ स्वरों की पांच आवृत्ति कर ऊपर से ऐं, ह्रीं, इन दो मुख्य बीजोंका योग कर ७२ बनाया जाता है, जिस का भी यह आशय माना जायगा कि नायिका नायक के सतत अनुध्यान से पागल हो उठी है। तान्त्रिक योग के साधक यह अच्छी तरह जानते हैं कि 'कुल कुण्डलिनी जब मणि पूर से ऊपर उठ कर अनाहत चक्र में उपनीत होती है, तो उस समय चक्र स्थित समुदाय देवता और वर्ण आदि कुण्डलिनी के शरीर में लय प्राप्त होते हैं। 'रं' बीज वायु मण्डल में लीन हो कर वायु के 'यं' बीज के रूप में परिणत हो जाता है, और कुल कुण्डलिनी के शरीर में लीन हो जाता है। और, अनाहत को भी परित्याग कर जब कुण्डलिनी विशुद्ध चक्र में उपस्थित होती है तो तत्काल चक्र स्थित समुदाय देवता और वर्ण आदि कुण्डलिनी के शरीर में लय प्राप्त होते हैं और उक्त 'यं' बीज भी आकाश मण्डल में लीन हो जाता है और आकाश भी 'हं' बीज के रूप में परिणत हो जाता है।'

कहना न होगा कि 'काम यान संप्रदाय' की कुल कुण्डलिनी—रति—जब स्वाधिष्ठान से मणिपूर में आ जाती है, तो चित्त खोया—खोया सा रहने लगता है और जल बीज 'वं' में परिणत पृथ्वी बीज 'लं' भी वह्नि बीज 'रं' में परिणत हो जाता है, जिस का तात्पर्य यह समझना चाहिए कि स्थिर भावापन्न चित्त पहले चंचल हो उठता है और द्वितीय कोटि में वह संतप्त होने लगता है। इस अवस्था को पार करते समय साधिका नायिका का शरीर क्षीण होने लगता है। काम यान में इसे ब्रह्म ग्रन्थि भेद कहा जाता है। इस अवस्था को पार करने के बाद कुल कुण्डलिनी उस मणिपूर से भी ऊपर उठती है और अनाहत चक्र में आ पहुंचती है। इस समय 'रं' बीज भी वायुमंडल में लीन होता हुआ 'यं' बीज में परिणत हो जाता है, और विशुद्ध चक्र में जाने पर वही 'हं' बीज के रूप में परिणत हो जाता है। तात्पर्य यह कि इन दोनों अवस्थाओं में नायिका को पूर्व स्मृतित्व के कारण रत्युद्रेक हुआ करता है, जिसे विष्णु ग्रन्थि माना जाता है। इस से ऊपर रति भाव के आने पर उसे आज्ञा चक्रोपनीता भावापन्ना कहा जाता है, जिस में 'हं' बीज भी मनश्चक्र में लीन हो जाता है, जिस का तात्पर्य यह है कि वह पूर्वानुस्मृति को भी भूलने लगती है। इस अवस्था में वह अभिसार किया करती है, और उस के बाद ही वह सहस्रार चक्रावस्थान भावापन्न होती हुई सामरस्य संप्राप्त हुआ करती है।

इस रहस्य को हृदयंगम करने के लिए, सामान्यत: मैं पाठकों से निवेदन करूंगा कि वे भगवान शंकराचार्य की प्रसिद्ध स्तुति, आनन्द लहरी, का ही, और न हो सके तो, परिशीलन करें, और उसके निम्न लिखित दो श्लोकों का काम शास्त्रीय प्रस्थान से समन्वित अर्थ करने का प्रयास करें।

श्लोक इस प्रकार हैं :——

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।९।

तथा,

क्षितौ षट्पंचाशत् द्विसमधिकपंचाशदुदके,
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपंचाशदनिले।
दिवि द्वाषट्त्रिंशन् मनसि च चतु:षष्टिरिति ये,
मयूषास्तेषामप्युपरि तव पादांबुजयुगम्।।१४।।[३२]

टीकाकारों की अनर्थ परंपरा।

मैथिल कवि कोकिल के ऐसे उत्तम काव्य के अर्थ करने में भी टीकाकारों ने कुछ कम अनर्थ नहीं किया है।

मैथिल कविवर चन्दा झा सहकृत गुप्त संस्करण में उक्त पद का अर्थ निर्देश नहीं होना उतना नहीं खटकता है जितना कि अन्य संस्करणकारों द्वारा जैसा-तैसा पाठान्तर कल्पित कर अनर्थ किया जाना।

आरा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ब्रज बल्लभ जी वाले संस्करण की स्थिति देखें। उस में इस प्रहेलिका का पाठ इस प्रकार दिया हुआ है:——

माधव माधव होहु समधान। तुअ विनु करव भुवन रितु पान।।
प्रथम पचीस अठाइस भेल। ता सम वदन हेम हरि लेल।।
पचिस अठारह बिस तनु जार। छिति सुत तेसर से जिव मार।।
सुमिरिय माधव ते दिन सिनेह। जे दिन सिंह गेल मीनक गेह।।
भनइ विद्यापति आखर लेख। बुध जन होथि से कहथि विशेष।।[३३]

अर्थ भी इसका इस प्रकार किया गया है कि:——होहु समधान——ध्यान दो। तुअ——तुम। भुवन रितु——वीस (विष)——भुवन १४ ॠतु ६ दोनों का जोड़ हुआ। तुअ...... पान——तुम्हारे विरह में विष पान करूंगी। प्रथम......भेल——प्रथम अक्षर 'क', पचीस वां 'म', अठाइसवां 'ल', अर्थात् कमल। ता सम——उस के (कमल के) समान। ता......लेल—कमल जैसा हमारा आनन हेम (विरह रूपी पाला) के लगने से मुरझा गया। पचिस...... जार——पचीसवां अक्षर 'म' अठारहवां 'द', वीसवां 'न' अर्थात् मदन (कामदेव) मेरे शरीर को जला रहा है। छिति सुत तेसर——छिति सुत (मंगल) से तीसरा स्थान अर्थात् शुक्र प्रभात समय उदित होता है। अतएव तात्पर्य प्रभात हुआ। अथवा शुक्र का अर्थ है काम देव। छिति......मार——प्रभात समय शुक्र का उदय देख प्राण जा रहा है। क्यों कि अब दिन में मिलने की आशा नहीं है। अथवा काम देव वियोग में प्राण ले रहे हैं। ते दिन——उस दिन का। जे——जिस। सिंह——गेह। सिंह राशि का नाम 'म', अर्थात् म अक्षर से जिस शब्द का आरंभ होता है, अर्थात् 'मस्तक'; और मीन राशि का नाम 'प', अर्थात् प अक्षर से जिस का शब्द आरंभ होता है, अर्थात् 'पद'। भाव यह कि जिस दिन सिंह राशि मीन के घर गया,

---

[३२] आनन्दलहरी; शंकराचार्यग्रन्थावली में प्रकाशित।

[३३] मैथिल कोकिल विद्यापति, (नवीन संस्करण, २००९ वि०) पृष्ठ ३३५ पद सं० ३८

अर्थात् तुम्हारा मस्तक मेरे पद पर पड़ा—जिस दिन तुम मेरे पांव पड़ते थे। होथि—होंगे। से—वह। कहथि—कहेंगे। विशेख—विशेष अर्थ।"[३४]

निःसंदेह अर्थ करने का यह प्रकार सर्वथा सदोष माना जायगा, जिस में कवि कोकिल के विचारों के साथ बलात्कार किया गया है। 'विरह और प्रबोध' स्तंभ में इस प्रहेलिका-पद को दिखला कर भी विरहिणी की वर्णना में पहली भूल यह दीख पड़ती है कि माधव के समक्ष दूती द्वारा विरह अवस्था का वर्णन अधिक चमत्कारपूर्ण रहने तथा कवि के संप्रदायानुसार अभीष्ट प्रतीत होने पर भी स्वयं नायिका के मुख से विरह वर्णन करवा कर पद की आत्मा का ही हनन किया गया है। गुप्त के 'करति' को 'करव' बनवा कर जो "डायरेक्ट ऐक्सन" कराया गया है वह स्पष्ट अत्याचार है; और आलंकारिक संप्रदायानुमत" कवि समय" की व्यापक अवहेलना है। क्यों कि, ऊपर बताया जा चुका है कि यहां कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तुना करुण श्रृंगार ध्वनि है; इस लिए, करव—करूंगी, का प्रयोग एक धमकी सा बन कर प्रकृत काव्य में अनौचित्य दोष ही उपस्थित करता है। इस प्रकार के अन्य प्रयोग भी इसी कोटि में रखे जाने चाहिए। दूसरी भूल यह हुई प्रतीत होती है कि अगले पदों में अक्षरों की कल्पना की गयी है, जिसमें 'प्रथम......' लेल "का अर्थ कमल जैसा आनन विरह रूपी पाला के लगने से मुरझा गया है, लिखा गया है, वह है। क्यों कि, यदि यही क्रम मान्य हो, तो "भुवन ऋतु पान" का अर्थ, भुवन १४, ढ़, ऋतु ६, च, संमिलित कर"ढच" का पान करना आता है, विष पान नहीं। और, इस के निराकरण का कोई भी उपाय भी उनके पास नहीं है। तीसरी भूल यह हुई प्रतीत होती है कि यहां हेम का अर्थ पाला किया गया है। और, कमल के समान वदन का हरण कर लेना हेम का यह भी इंगित करता है कि मानो वदन कोई वस्तु ऐसी होती है जो चुराई भी जाती है। साथ ही, कमल वदनी व्यथिता हो चली है, ऐसा अर्थ निकालने का प्रयास करना "महतो वंशस्तम्वाल्लटवानुकर्षः" हो गया है। चौथी भूल यह हुई है कि "छिति सुत तेसर" से शुक्र लिया गया है। फलित ज्यौतिष के पण्डितों को यह भी सुविदित है कि मंगल से तीसरा गुरु ही होता है न कि शुक्र। वार गणना क्रम किं वा दशा प्रवृत्ति गणना क्रम, किसी भी क्रम में कोई दूसरा आता ही नहीं है। साथ ही, शुक्र से प्रभात का उपलक्षण करना भी भ्रम विचेष्टित सा प्रतीत होता है। और, "छिति......मार" का यह अर्थ करना कि प्रभात समय शुक्र का उदय देख कर प्राण जा रहा है; क्यों कि, अब दिन में मिलने की आशा नहीं है, एक बहुत बड़ा भ्रम विचेष्टित है। क्यों कि विरहिणी के घर यदि दिन में उस के प्राणनाथ आ जायं, तो उसे बहुत बड़ा आश्वासन मिल जाता है ही। पांच वीं भूल यह हुई दीखती है "सुमिरिअ......गेह" के अर्थ करने में। ज्यौतिष के वेत्ता यह जानते हैं कि मीन राशि में "प" अक्षर नहीं आता है। इस लिए, उस के आधार पर "जिस दिन तुम मेरे पांव पड़ते थे", यह अर्थ करना भी उचित नहीं हुआ है।

यहीं पर इसी पद के एक दूसरे पाठान्तर का प्रसंगवश उद्धरण भी अप्रासंगिक नहीं होगा जिसे "सर्व तन्त्र स्वतंत्र" महामहोपाध्याय (संप्रति स्वर्गीय) बालकृष्ण मिश्र ने संपादित किया था। पाठ इस प्रकार है:—

माधव माधव कर अवधान। तुअ विनु भुवन १ करत रितु पान॥
पहिल २ पचीस ३ अठाइस ४ भेल। ता सम वदन हेम ५ हरि लेल॥
पचिस अठारह बिस ६ तनु जार। छिति सुत तेसर ७ से जिव मार॥
छओ अठारह ८ हरसिम ९ लाग। ज्वलित अनल सम मलयज जाग॥
सुमिरिय माधव ओ दिन सिनेह। जे दिन सिंह गेल मीन क गेह १०॥
हरि वाहन भष तइसन हार। कुच युग भेल महीधर भार॥
अछल हीत जत तत कर दंद। विधि विपरीत सबहि भेल मंद॥
नयन सिंगार बाहु लिखि राख। करति वरन हरि शिव शिव भाख।
भनहि विद्यापति आखर लेख। बुधजन हो से कहथि विशेष॥४०॥[३५]

[३४] वहीं, टीका।
[३५] पदावली, पद ३५।

उक्त पुस्तक में उन्होंने जो टिप्पणी दी है वह भी इस प्रकार है। अ० (अलंकार) विभावना। १. जीवन।प्राण। २. क।३ग। ४ ल। कमल। ५ हेमंत। ६ मदन। ७ शुक्र। ८ चन्द्र। ९ सूर्य। १० जल, वन। ११ गरुड़ भक्ष्य सांप।

स्वर्गीय मिश्र जी न्याय दर्शन के महान विद्वान थे। साहित्य के संबंध में भी उन की अपनी मर्यादा रही। किंतु, उक्त पद में विभावना अलंकार होना लिख कर उन्होंने अपने अनुरूप कार्य नहीं किया है। "जीवनं भुवनं वनम्"[36] के आधार पर भुवन से जीवन और उस से प्राण, तथा "मीनक गेह" का अर्थ जल सेवन बताते हुए एक तरफ उन्होंने अपने शास्त्रीय अगाढ़ पाण्डित्य का परिचय दिया है। किंतु, उसी क्रम में हेम का हेमन्त अर्थ करना और हरि सम का हरसिम पाठ मान कर उस का अर्थ सूर्य करना अशास्त्रीय हो गया है। साथ ही, सिंह के वन गमन का कोई तात्पर्य नहीं निकलता है। ग्राम्य प्रचलनों के आधार पर अर्थ करना वैसे विद्वान के लिए शोभा दायक नहीं हुआ है और"भुवन रितु पान" का अर्थ स्पष्ट नहीं करना भी वैसे एक महान विद्वान के लिए उचित नहीं जंचता है।

चौथी प्रहेलिका

अब यहां मैं कवि कोकिल की एक और प्रहेलिका उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं ही करूंगा, जिस में कवि कोकिल ने प्रणयि-प्रणयिनी के आदर्श प्रेम का निरूपण किया है।

यों तो कवि कोकिल का प्रत्येक पद ही अपनी विशिष्ट माधुरी के लिए पर्याप्त स्थान रखता है किन्तु यह पद उन में शीर्ष स्थानीय माना जायगा। कवि कोकिल ने प्रणयी और प्रणयिनी का आदर्श स्नेह कैसा होना चाहिए, इस पर बहुत चिन्तन--अनुध्यान किया तो उन्हें सब से सुन्दर उदाहरण मिला, "तीनि क नेह"--तीन संख्या का प्रतीकात्मक स्नेह। तीन की संख्या को जिस अंक के साथ लिखा जायगा वह उसी के पृष्ठाभिमुखीना हो कर रहेगी। ठीक इसी प्रकार, जिस के साथ प्रणय किया जाय, प्रणयिनी को चाहिए कि वह उसी के प्रति पृष्ठाभिमुखीना हो, अर्थात् अनन्यपूर्व भाव से उसी की अनुगामिनी बनी रहे। और, प्रणयी को भी इस आदर्श का अनुसरण करना आदर्श प्रणय माना जायगा। महाकवि ने इस अनुत्प्रेक्षितपूर्वा वस्तूत्प्रेक्षा को जिस पद में उल्लिखित किया है, उस का ग्रियर्सन-अनुसारी पाठ ही पहले देखें। पद इस प्रकार है:--

तीनिक तेसर तीनिक वाम।
तीनिक तेसर धनि केर ठाम।।
तीनि तीनि कए रोखलि फूल।
तीनिक तेसर माधव तूल।।
तीनि तीनि कए उठलिहि भाखि।
तीनिक तेसर माधव साखि।।
भनइ विद्यापति तीनिक नेह।
नागर कां धिक नारि सिनेह।।[37]

अर्थात्--तीन का तीन वाम रहा है। तीन का तीसरा धनी के यहां है। वह तीन तीन कर रुसती-फूलती है। क्यों कि, तीन का तीसरा माधव से मिल गया है। वह तीन तीन बोल उठती है। क्यों कि, तीन का तीसरा माधव का साथी है। विद्यापति कहते हैं कि तीन का स्नेह नागर के लिए नारी का स्नेह है।

प्रेम विज्ञान के अनुसार प्रणय लीला में प्रेमी, प्रेमिका और प्रेम,--इन तीनों का रहना अनिवार्य है। इस त्रिक के विना प्रणय लीला सर्वथा असंभव हुआ करती है। यहां इस त्रिक में तीसरा कामदेव एक त्रिक नायिका के लिए वाम हो उठा है--'तीनिक तेसर तीनिक वाम।' क्यों कि, धनी, नायिका काम के तीसरे बाण से, आम्र मंजरी से बिद्ध है। यदि काम वाम नहीं हुआ रहता तो नायिका के साथ ही नायक को भी बाणविद्ध करता। अब, उस नायिका

[36] अमरकोष, वारिवर्ग, श्लोक ३।
[37] मैथिलक्रैष्टोमैथी, पद सं० ८७

को मदन-अव्याकुल उस नायक से ईर्ष्या होती है, अतः वह नायक को भी तीन, अर्थात् मदन, के समान ही वाम मान कर रुसती-फूलती है। कारण, उस समय इस त्रिक के तीसरे अर्थात् —काम देव से माधव अर्थात् वसंत भी आ तुला है—मिल गया है। एक तो मदन-व्याकुला, दूसरे वसन्त काल, नायिका का व्याकुलतर हो उठना भी स्वाभाविक है। वह नायक, नायक, कहती उठ खड़ी हो जाती है। विरहोन्माद जो ठहरा। कवि कोकिल इस पर ताना मारते हैं कि इस त्रिक के तीसरे—काम और माधव, अर्थात् वसंत, सखा हैं—'तीनिक तेसर माधव साखि।' काम-देव ने नायिका पर हमला किया तो सखा वसंत को 'नहले परे दहला' डालने को आ उपस्थित होना ही चाहिए। कवि विद्यापति कहते हैं कि नागर (नायक) का नारी (नायिका) के साथ के स्नेह का यथार्थ 'रूप तीन का नेह' होना चाहिए।

प्रहेलिका में गणित का चमत्कार।

अंक विद्या के जानकारों से यह भी अविदित नहीं कि ३ को द्विगुणित करने पर ६, और त्रिगुणित करने पर ९ संख्या होती है, जो अंक में सबसे बड़ी संख्या है। यही नहीं, अंक विद्या का यह भी एक अद्भुत चमत्कार है कि ३ को गुणित करने पर एक में ३, दो में ६, और ३ में ९ बराबर आया करता है। जैसे—३ × ४ = १२ = १ + २ = ३। ५ × ३ = १५ = १ + ५ = ६। ६ × ३ = १८ = १ + ८ = ९। ७ × ३ = २१ = २ + १ = ३। ८ × ३ = २४ = ४ + २ = ६। ९ × ३ = २७ = २ + ७ = ९। मैथिल कोकिल का तात्पर्य यह है कि प्रणय यदि समान रूप से उभयनिष्ठ हो, तभी वह सत्य प्रणय होता है, जिस में दोनों की एकरूपता—अभिन्नता हो जाती है। कवि कोकिल का 'अनुखन माधव माधव रटइत राधा भेलि मधाई'[३८] इसी का व्याख्या पद है।

ऐसे पद का जिस प्रकार विकृत अर्थ किया जाता रहा है, उस की बानगी के तौर पर विद्यापति साहित्य के प्रख्यात अनुशीलक श्री विमान विहारी मजुमदार का[३९] अर्थ देखना ही पर्याप्त होगा। अर्थ इस प्रकार है :— तीन के बाद अर्थात् तीन स्वर वर्णों के (अ, आ, इ, वर्ण के) पर (जो स्वर वर्ण अर्थात् 'आ') तृतीय के वाम में अर्थात् तृतीय स्वर के (=इकार के वाम में) उस से अर्थात् 'आ'—इस वर्ण में (?) (परवर्त्ती) तृतीय स्वर अर्थात् 'उ' कार) (योग करिए)। आ—उ—आउ (मैथिल—आओ)।—एस। (ये हेतु) धनी का (सुन्दरी का) देह (ठाम) तीन के बाद तृतीय के (न्याय) (हो गया है); अर्थात् सुन्दरी का देह (३ + २ = ५ पंच) पंचबाण के समान हो गया है। फूल (प्रस्फुटिता धनी) तीन तीन कर के अर्थात् माधव नाम के तीन वर्ण उच्चारण कर कर के (अन्त में) कोपान्विता हो गयी है (रोखलि)। (कारण) माधव तृतीय वर्ण के बाद तृतीय दिवस के अर्थात् बृहस्पति के तुल्य (बृहस्पति कहने से जीव—जीवन बोधित होता है। सुतरां, माधव जीवन के तुल्य) हैं। (धनी) तीन तीन (=माधव) उच्चारण कर के उठ पड़ी। (हे) माधव (उस का) साक्षी तीन का तीसरा अर्थात् तीसरे दिन के बाद का तीसरा = बृहस्पति = जीवन। विद्यापति कहते हैं, तीन का स्नेह (अर्थात् इन तीन वर्णों में जो स्नेह प्रदर्शित हुआ है वह) है नागर के प्रति नारी का स्नेह।

उपसंहार।

इस अवसर पर कवि कोकिल के पदों का अर्थ करने के प्रयासियों से मैं एक बात कहना नहीं भूलूंगा कि वे वैसे प्रयास से पूर्व संस्कृत साहित्य का पूर्ण रूप से परिशीलन करने का सत्प्रयास करें, और जब उन्हें इतना आत्म विश्वास हो जाय कि अब वे अर्थ करने के योग्य अपने को पाते हैं तो, तब कहीं कवि कोकिल के पदों के अर्थ करण में अग्रसर हों। उन्हें यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि कवि कोकिल मूलतः संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्हों ने प्रेरणा बराबर संस्कृत से ली थी। केवल, विन्यास पद्धति उन की अपनी रही। मेरा विश्वास है कि यदि इस दृष्टिकोण से कवि कोकिल के पदों के परिशीलन का प्रयास किया जा सकेगा तो, तभी मैथिली साहित्य का श्रेयः संपादन भी हो सकेगा और हो सकेगा कवि कोकिल की रचनाओं के साथ न्याय भी।

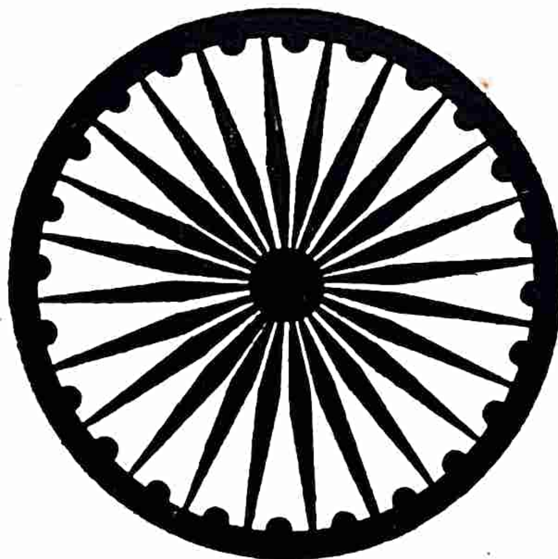
---

[३८] विद्यापति पदावली (मजुमदार बंगला सं०) पद सं० ७५१।

[३९] विद्यापति, बंगला संस्करण, पृ० ३६७ में ५७९वें पद का हिन्दी रूपान्तर।

THE JOURNAL
OF THE
BIHAR RESEARCH SOCIETY

VOL. XLIV MARCH—JUNE, 1958 PARTS I & II



PUBLISHED BY
THE BIHAR RESEARCH SOCIETY, PATNA
Price Rs. 10/-